IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

'वेलि किसन रूक्मणी री' का काव्यशास्त्रीय विवेचन

डॉ मुक्ता अग्रवाल

सहायक प्राध्यापक, हिंदी

शा. के.आर.जी. स्ना.(स्वशासी)महाविद्यालय, ग्वालियर मप्र

शोध सारांश –

'वेलि किसन रूक्मणी री' राजस्थानी साहित्य का महत्वपूर्ण काव्य है, जिसमें कृष्ण और रूक्मिणी के प्रेम, संघर्ष एवं विवाह की कथा के द्वारा प्रेम, भक्ति तथा नायिका–भावनाओं का सुंदर समन्वय किया गया है। काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसमें रस, छंद, अलंकार, नायिका भेद एवं भाषाशैली की समृद्ध परंपरा दिखायी देती है, जो इसे एक उत्कृष्ट लोककाव्य बनाती है। इस शोध का उद्देश्य इस कृति की सौंदर्यपरकता, भावप्रवणता एवं पौराणिकता को उजागर करना है। साथ ही इसके अध्ययन से पता चलता है कि यह काव्य न केवल पौराणिक आख्यानों का पुनःप्रतिपादन करता है, वरन् लोकसाहित्य की गेय परंपरा को भी सजीव बनाये रखता है।

बीज शब्द –

पौराणिक आख्यान, काव्यशास्त्रीय अध्ययन, खण्डकाव्य, वेलि शब्द, रस, छंद, अलंकार, भाषा, नायिका भेद, पूर्वराग अवस्था, डिंगल।

मुख्य आलेख –

साहित्य आनंद की मनोभाविनी रस प्रस्तुति है। अनादिकाल से मनुष्य के क्षोभ एवं पीड़ा की संकुचित मनोवृतियों का परिहार एवं परिष्कार करते हुये काव्य ने मनुष्य की आत्मिक चेतना को कल्याणधर्मी बनाने में अपना मांगलिक योग किया है। वस्तुतः मनुष्य बुद्धितत्व की अपेक्षा हृदयतत्व के अधिक निकट रहते हुये बंधुभावना, समत्वबोध, करूणा, परस्पर सहयोग, विश्वास और निःस्वार्थ प्रेम के उदात्त आदर्शों का अपने व्यक्तित्व में सार्थक समावेश करते हुये अपनी सामाजिक यात्रा राष्ट् और विश्व संदर्भों में संपन्न करता है। इस यात्रा में साहित्य ही उसका कल्याण मित्र है, क्योंकि साहित्य के अन्तःप्राण कल्याण के गर्भ में निहित है। अस्तु, जो काव्य अपनी रसात्मक भावभूमिका में मानव जीवन के लिये रचनात्मक और प्रेरणात्मक संदेश वितरित करने में जितना समर्थ होगा, उसका स्थायीत्व एवं उत्कृष्ट महत्व उतना ही कालातीत एवं यशजयी होगा। इस कड़ी में **महाकवि पृथ्वीराज राठौड़** एवं उनके काव्य **'वेलि किसन रूक्मणी री'** का महत्त्वपूर्ण स्थान है। तलवार और कलम के धनी, रणक्षेत्र तथा राजसभा में समान रूप से अविचल, स्वाभिमानी, राष्ट्रभिमानी, संस्कृति अभिमानी पृथ्वीराज राठौर राजस्थान के बीकानेर की वीर प्रसविनी भूमि के श्रेष्ठ नवरत्न थे। भले ही परिस्थितिवश वे मुगल सम्राट अकबर के राजसभासद अथवा संधिविग्राहक मंत्री रहे, किंतु यह ऐतिहासिक तथ्य है कि राठौरराज की तलवार का पानी और उनकी अक्षय कीर्ति संवाहिका वाणी का तेज अकबरी दरबार में भी दीप्तिमान रहा। भक्तिकाल तथा रीतिकाल के संधिस्थल पर प्रकट होकर बेलिकार ने अपने समय की मॉग को पूरा किया तथा भक्ति एवं श्रंगार का पवित्र साधनालय **'वेलि किसन रूक्मणी री'** के रूप में स्थापित करते हुये अपने यश को अर्जित किया है।

राजस्थानी डिंगल भाषा में निबद्ध यह रचना अपने युग का सफलतम उद्देश्यपूर्ण खण्डकाव्य है, जिसे चारणकाव्य के अन्तर्गत **पंचम वेद** का गौरव मिला है। प्रसिद्व भाषाशास्त्री डॉ. टैस्सीटोरी ने इसे डिगल के समृद्व साहित्य भंडार का सबसे जगमगाता रत्न कहते हुये कहा है– "This veli of Krishna and Rakmani by Rathora Prithiraja of Bikaner, is one of the most fulgent gems in the richmine of the Rajasthan Literature." (1)

पृथ्वीराज कृत इस वेलि को दुरसा आढा ने पॉचवा वेद तथा उन्नीसवां पुराण कहा है।

महाकाव्य के अधिकांश गुणों का पोषण करने पर भी मूलतः **'वेलि क्रिसन रूक्मणी री'** सर्गबद्ध महाकाव्यात्मक कृति नही है। वेलिकार ने निश्चय ही अध्याय या सर्ग संबंधी नियम निर्देश का पालन नही किया है। यद्यपि यह कोई गंभीर आक्षेप ना होने के कारण इसकी सफलता पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगाता, वस्तुतः वेलि एक ही सर्ग का काव्य है, क्योंकि इसकी कथा का विस्तार एक घटना तक ही सीमित है, अर्थात् रूक्मणीहरण एवं श्रीकृष्ण का उन्हें स्वीकार कर परस्पर विश्वासपूर्ण प्रेमभाव का आदान–प्रदान करते हुये सुख की उपलब्धि तक सीमित होने के कारण वेलि के कथा विन्यास अथवा पात्रों के चरित्र–चित्रण द्वारा जीवन का व्यापक समग्र स्वरूप उद्घाटित नहीं हो पाता, क्योंकि वेलिकार का यह उद्देश्य भी नहीं है। वह तो उभयपक्ष में प्रेम के सान्द्र सुख का प्रकाशन करने तक ही अपनी सिद्धि मानता है। वेलि के पाठालोचक आनंद प्रकाश दीक्षित ने इसके प्रबंधतत्व का परीक्षण करते हुये कहा है – **''वेलि महाकाव्य की सीमारेखा को स्पर्श तो करती है, किंतु उसकी पहुँच महाकाव्य के केन्द्रीय तत्व तक नहीं हो पाती, इसलिये वेलि महाकाव्य की अपेक्षा एक सफल श्रंगार रस प्रधान वर्णनात्मक खंडकाव्य है।''** (2)

वेलि नामकरण के औचित्य अथवा आधार पर विचार करने पर पता चलता है कि वेलि शब्द की व्युत्पत्ति और उसके काव्यरूप के संबंध में विद्धानों ने अपने–अपने मत दिये है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने वेलि शब्द का अर्थ 'विलासवर्णन' माना है। डॉ. भोलानाथ तिवारी ने संस्कृत भाषा के विलास शब्द के अवान्तर रूप अर्थ के माध्यम से 'बेल्लि' शब्द स्वीकार किया है, जिसका वर्तमान प्रचलित रूप डिंगल में बेलि हुआ। डॉ. विश्वनाथ मिश्र, भोलाशंकर व्यास तथा बाबूराम सक्सेना के अनुसार वेलि शब्द संस्कृत के बल्ली अथवा बेल्लि से ग्रहीत है। इस प्रकार वेलि शब्द काव्यपरंपरा और लोक व्यवहार में विभिन्न अर्थ–रूपों में प्रचलित है। जैसे– बेलियों, बल्लरी (लता) बल्ली, बेलि, बल्लिका, बेल आदि। इसी प्रकार इसका शब्दगत, ध्वनिगत, अर्थगत अभिप्राय भी पृथ्क–पृथ्क हैं जैसे – संतान, वंश, आनंदलता, उपवन, लहर, काव्यरूप, छंद विशेष आदि। डिंगल वेलिकाव्यों के आरंभ और अंत में काव्यसंज्ञा अर्थात् रचना के नामकरण के रूप में भी वेलि शब्द का प्रयोग होता रहा है। इस प्रकार वेलि राजस्थान का विशिष्ट काव्यरूप है। स्वयं 'वेलि क्रिसन रूक्मणी री' के रचियता राठौरराज ने प्रस्तुत काव्य को वेलि संबोधन दिया है। उसके अनुसार –

''विवरण जौ बेलि रसिक रस वंछौ करौ करणि तौ मूझ कथ।
पूरें इते प्रामिस्यौ पूरौ इअें ओछें ओछौ अरथ।।'' (3)

इस ग्रंथ के वेलि नामकरण का चाहे कुछ भी कारण और औचित्य रहा हो, किंतु यह निर्विवाद है कि इस रचना में श्रृंगारबेलि, प्रेमबेलि, उत्साहबेलि, भक्तिबेलि और काव्यबेलि का सार्थक समाहार हुआ है, इसीलिये यह कथन सत्य के अधिक निकट प्रतीत होता है कि कवि ने अपने इस श्रृंगार, वीर, भक्ति रस संबद्धित काव्य का नामकरण अपने पूर्व में प्रचलित काव्य मान्यताओं के अनुसार किया है। पृथ्वीराज राठौर अपने युग के श्रेष्ठ रचनाकार थे। भक्तश्रेष्ठ नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' ग्रंथ में राठौरराज की काव्य प्रतिभा का सादर स्मरण इन पंक्तियों में किया है –

''सवैया गीत, श्लोक, बेलि, दोहा गुण नवरस,
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायो हरि जस।
रूक्मणी लता वर्णन अनूप वागीस बदन कल्याण शुभ
नरदेव उभय भाषा निपुण पृथ्वीराज कविराज हूंव।'' (4)

'वेलि क्रिसन रूक्मणी री' की कथावस्तु का प्रेरणास्त्रोत भागवत्पुराण, विष्णुपुराण और पद्मपुराण में संकेतित कृष्ण और रूक्मणी का प्रेमसूत्र है। उनकी मान्यता में– ''इस कथा का प्रथम बीज उन्हें भागवत् में मिला है और वही प्रेम, श्रंगार तथा भक्ति की अमरबेल के रूप में इस काव्यबेलि में प्रतिफलित हुआ है –

''वल्ली तसु बीज भागवत वायौ महि थाणौ प्रिथु दास मुख।
मूल ताल जड़ अरथ मण्डहे सुथिर करणि चढ़ि छॉह सुख।।'' (5)

इस काव्य में सर्वप्रथम प्रेम की प्रेरक शक्ति श्रंगार की अधिष्ठात्री; नारी के व्यक्तित्व और प्रेमल मनोभाव का व्यापक एवं सर्वांगपूर्ण चित्रण हुआ है। वेलि की **नायिका रूक्मणी** अपरूप सौंदर्यवर्धिता है, वे स्वकीया मुग्धा नवोढ़ा ज्ञातयौवना और पति (कृष्ण) अनुरक्ता है, इसीलिये वेलिकार ने सर्वप्रथम नारी का वर्णन करते हुये यह संकेत दिया है कि यह पूर्वपरंपरा एवं काव्यरीति पोषित है कि श्रंगार रसवर्धित ग्रंथ की रचना करते समय प्रथमतः नायिका का ही वर्णन किया जाये। इस संबंध में कवि की निम्न पंक्तियॉ प्रमाण हैं– **''सुकदेव व्यास जैदेव सारिख, सुकवि अनेक ते एक सन्थ। त्रिवरणण पहिलौ**

कीजै तिणि, गूँथियै जेणि सिंगार ग्रंथ।।'' (6) वेलि के **नायक कृष्ण** है, जो केवल श्रृंगार के ही उपास्यदेव नहीं हैं, अपितु रचनाकार पृथ्वीराज के भी हृदयदेवता है, इस बेलिकाव्य की प्रेमशक्ति के पारस है। संभवतः इसी कारण वेलि के प्रेमवर्णन में आध्यात्मिकता, अलौकिकता तथा समासोक्ति भाव का समाहार हो सका है। रूक्मणी लक्ष्मी का अवतार एवं विश्वमातृशक्ति का केन्द्र हैं। यद्यपि जगत् माता–पिता का श्रृंगार एवं एकांत प्रेम व्यवहार का वर्णन काव्य एवं परंपरा निषिद्ध हैं। स्वयं बेलिकार ने इस मान्यता को ग्रहण किया है, तथापि पृथ्वीराज ने नायिका के अपरूप सौंदर्य, नखशिखवर्णन, रति उत्साह, कृष्ण अनुराग में अनन्यता का जो मर्यादित चित्रण किया है, वह भक्त का कृतज्ञ निवेदन मात्र है। उसमें रीतिकालीन श्रृंगारी कवियों की भॉति चमत्कृति का भाव नहीं है, वह तो प्रेम के आराध्य के प्रति विनयपोषित अन्तःकरण का सरल शुचिमय आभार ज्ञापन है। इसमें श्रृंगार के स्वस्थ उत्कर्ष तथा विशुद्ध (अद्वैत) प्रेम की स्थापना के साथ–साथ अप्रत्यक्ष में भक्ति की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करने का योग है। श्रीकृष्ण तथा रूक्मणी की इस प्रेमकथा के श्रद्धामय गायन और श्रवण से मनुष्यों के समस्त संतापों, भौतिक विकारों का शमन होता है तथा उसके चित का अलौकिक विस्तार होने से प्रभु के अद्वैत प्रेम एवं भक्ति के अखंड आनंद का पुण्य लाभ होता है। वेलिकार की उक्ति है –

''चर्तुविध वेद प्रणीत चिकित्सा ससत्र उखध मंत्र तंत्र सुवि।

काया कजि उपचार करन्ता हूवै सु बेलि जपन्ति हुवि।'' (7)

वेलि की नायिका जहॉ श्रृंगारमंडित है, उसके हृदय में जहॉ कृष्ण की प्रेमबेलि का श्रद्धा भक्ति रूप बीज अंकुरित है, उनकी मर्यादा स्वयं कवि की इस पंक्ति में प्रतिष्ठित हुई है – **''लोकमाता सिंधुलता श्री लखमी पद्मा पद्मालया प्रभा।''** रचनाकार की दृष्टि में 'वेलि' के श्रद्धापूर्ण गायन का यह पुण्य प्रभाव लक्षित होता है कि इसके आराध्य नायक–नायिका की कृपा से जीव इस कलिकाल में भी बिना किसी प्रयत्न के, बिना इच्छा किये सब गुण, धन, वैभव, कीर्ति का स्वामी निश्चित ही बनता है। बेलि साक्षात् कामधेनु तथा हृदय को आलोकित करने वाली श्रृंगार चिंतामणि है – **''कलि कलप बेलि वलि कामधेनु का चिंतामणि सोमवल्ली चत्र पृथु बेलि पंचम वेद प्रसिद्ध।'' (8)**

वेलिकाव्य का प्रतिपाद्य रस श्रृंगार और वीर है, क्योंकि वीरता की भावना मनुष्य की सुखवादी श्रृंगार भावना की पोषक और सहायिका है। राजस्थान का संपूर्ण डिंगल साहित्य जहॉ वीरता के शौर्य संगीत से झंकृत है, वहीं रणमत्त रणबांकुरों के लोकजीवन में श्रृंगार की लाजवन्ती पायल का सुमधुर, सुग्राही, सुरोचक, ललितललाम, रूनझुन नुपुरनाद भी निहित है। वेलि में ओज भाव और भक्ति का प्रभावपूर्ण समाहार है इस कारण इस ग्रंथ में पृथ्वीराज ने अपने युग की प्रचलित शैलियों का, काव्य परिपाटी का तथा पौराणिक घटना का कलात्मक निर्वाह किया है। डा. आनंदप्रकाश दीक्षित के अनुसार – ''वेलि भक्ति तथा रीति की वह काव्यलता है जिसमें कीर्ति की गंध एवं आनंद के फलपूर्ण भाव सम्पन्नता सहित सज्जित है। भक्ति और श्रृंगार की इतनी गहरी, समर्पित, मधुर साधना अन्यत्र दुर्लभ है।'' यह काव्य वस्तुतः श्रृंगार रस की भावरत्नी मंजुषा है, जिसमें आनंद के विमल रत्न संरक्षित है। काव्य वर्णन में रसराज श्रृंगार के संयोग तथा वियोग पक्ष का उचित समन्वय होता है। वियोग की श्रेष्ठता तभी सिद्ध होती है, जब उसके पूर्व संयोग सुख की चरम अनुभूति ज्ञापित हो। इसी प्रकार संयोग वर्णन के गंभीर चित्रांकन हेतु वियोग की मनःअवस्थाओं का गंभीर उद्घाटन परस्पर सापेक्ष है। निश्चय ही राठौरराज द्वारा रचित वेलि संयोग श्रृंगार प्रधान कृति है, इसलिये कवि ने संयोग की श्रेष्ठता मंडित करने के पूर्व रूक्मणी के पक्ष में नायक श्रीकृष्ण के प्रति मन के आतुर भाव को लक्षित कराते हुये अप्रत्यक्ष में वियोग की विह्वलता का निदर्शन किया है। वेलिकाव्य में वियोग श्रृंगार के अंतर्गत केवल **पूर्व अनुराग अवस्था** का वर्णन किया गया है। मान तथा विप्रलंभ अवस्था के प्रति कवि की रूचि इसलिये नहीं लक्षित होती कि विवाहोपरांत रूक्मणी तथा कृष्ण का प्रेम सुख–संयोग के उच्च शिखरों पर आरोहित हुआ है। वियोग की पूर्व अनुराग अवस्था के दो माध्यम होते हैं– श्रवण तथा दर्शन। रूक्मणी श्रीकृष्ण की वीरता, बलिष्ठता, तेजस्विता, गुणश्रेष्ठता और प्रेमभावना के कारण सहज अनुरागमती हुई है। वेलि में रूक्मणी के प्रेम का कारण श्रीकृष्ण के रूप को श्रवण माध्यम से ग्रहण किया जाना है। यही अवस्था श्रीकृष्ण की भी है। रूक्मणी के विषय में अन्य मुख द्वारा प्रशंसा सुनकर कृष्ण मुग्ध हुये। कृष्ण के हृदय में उत्पन्न इस रूक्मणी अनुराग को ब्राह्मण के पत्र ने और अधिक तीव्र किया। इस प्रकार दोनों पक्ष में संयोग के पूर्व विरह के पूर्व अनुराग मनोभाव से निरंतर कथा में विकास होता गया है। वस्तुतः शास्त्रीय दृष्टि से श्रीकृष्ण और रूक्मणी के संयोग–सुख की कामना में इसी मंजीष्ठ पूर्वानुराग का योग है। वेलि का वियोग वर्णन मर्यादित और संयमित है एवं नायिका के शीलभाव की रक्षा करने के प्रयोजन से वेलिकार ने वियोग की आरंभिक 5 अवस्थाओं तक ही वर्णन को सीमित रखा है। अभिलाषा का एक संश्लिष्ट चित्र दृष्टव्य है–

''सा अनुराग थयो मनि श्यामा वर प्रा व वर

हरि गुण मणि उपनि जिका हर हर तिणि वन्दे गवरि हर।।'' (9)

उपर्युक्त वियोग का सांकेतिक चित्रण करते हुये कवि ने श्रृंगार के संयोग वर्णन का मधुमय, रूचिपूर्ण सुखद गायन किया है। संयोगभाव को अधिक समृद्ध करने के लिये कवि ने मर्यादा तथा भक्ति के आवरण में जगतमाता, हरिप्रिया रूक्मणी के श्रृंगार का कलात्मक, भावनाप्रद वर्णन किया है। यह स्मरणीय है कि श्रृंगार को प्रधानता देते हुये भी रचनाकार ने भक्त हृदय की मर्यादा का भी सफल निर्वहन किया है। उनका नखशिख वर्णन, अलंकरण विधान, रूपवर्णन अत्यधिक स्वाभाविक, मधुर एवं रंजक है। नायिका के रूपमाधुर्य में ऐसा गंभीर आकर्षण है कि उसके नित दर्शन से नेत्र तृप्त होते ही नहीं।

वेलिकार छंद नियोजन में सिद्धहस्त कवि है। राजस्थान में वेलियों या वेलिया नामक गीत अत्यधिक लोकप्रिय है, जिसे एक विशेष छंद भी कहा गया है। प्रस्तुत **'वेलि किसन रूक्मणी री'** में कवि ने प्रायः **वेलियों छंद** का प्रयोग किया है। अतैव यह भी संभव है कि इस ग्रंथ के नामकरण में इस छंद की उपस्थिति महत्वपूर्ण हों। डा. मोतीलाल मैनारिया के अनुसार– ''पृथ्वीराज ने वेलि की छंद योजना में प्रत्येक शब्द अपनी मौलिक सूझबूझ, उर्वर कल्पनाशक्ति तथा कलात्मक प्रवीणता के साथ संजोया है इस कारण उसकी चित्रात्मकता (बिम्ब योजना) भाव एवं प्रभाव की दृष्टि से अनुपमेय है।''

वेलि का **अलंकार सौष्ठव** पूर्णतः भावाश्रित है। उसमें रस को उद्दीप्त करने की अपूर्व चमत्कृति है, अलंकार स्वाभाविक एवं प्रसंगानुकूल है। ऐसा प्रतीत होता है कि वेलिकार ने अपनी काव्यभाषा वल्लरी में मंजरित अलंकार पुष्पों की रसगंधयुक्त माला गूँथकर अपने कथा पात्रों का सौंदर्य अभिषेक करते हुये अपनी रूचि, श्रद्धा को कृतज्ञ भाव से अर्पित किया है। वास्तव में अलंकारों की उपयोगिता काव्य शरीर में अर्थ और भाव की सुंदरता को बढ़ाने में होती है, क्योंकि काव्य बुद्धि का नहीं हृदय का आहार है तथा वेलिकार इस तथ्य से सुपरिचित है, इसीलिए उन्होंने भावों को रसदशा के प्रति उत्प्रेरित करने में तथा बिम्ब विधान में अलंकारों का संतुलित उपयोग सफलतापूर्वक किया है। वेलि का कोई भी ऐसा पद नहीं है, जो अलंकारों की सहज कांति से रहित हो। अनुप्रास, यमक तथा काकुवकोक्ति जैसे शब्दालंकारों का इसमें सटीक प्रयोग हुआ है। साथ ही कवि के अनुप्रास प्रयोग अर्थ–गौरव और भावनाओं की कमनीयता से तरलित है। इस कारण इसकी प्रत्येक पंक्ति कला की चमत्कृति से आलोकित है। उत्प्रेक्षा वेलिकार को न केवल अत्यधिक प्रिय है, अपितु वे उत्प्रेक्षा के सम्राट कवि है। कवि ने रूक्मणी के सौंदर्य अलंकरण में कल्पना, भावना और माधुर्य के नवनीत का इस प्रकार रसलेप किया है कि रूपकातिश्योक्ति आदि अर्थालंकारों के माध्यम से रूक्मणी के देहाकर्षण को रसिकजनों के श्रृंगाारविहारी चित्तों के लिये और भी लावण्यस्फूर्त बना दिया है। उपनामों का पारंपरिक उपयोग होने पर भी उनका सौंदर्य नवीन है, स्वाभाविक सौंदर्य–आभरणों से विभूषित रूक्मणी की देह दीपपंक्ति की कांति के समान झिलमिल है–

''किधै मधि माणिक हीरा कुन्दण मिलिया कारीगर भयण
श्यामा तणय लिलाट सौ कुमकुम बिंदु प्रस्वेद कण।'' (10)

पृथ्वीराज भाषा के मर्मज्ञ थे। शब्दों में प्राण के त्वरा–ध्वनित करने का कौशल उन्हें प्राप्त था। उनकी कविता एक ओर तलवार की कांति की भॉति तीक्ष्ण और प्रखर थी, दूसरी ओर उसमें प्रेम और भक्ति की मार्दवता थी तथा तीसरी ओर उसमें कलात्मक सजावटता थी। वेलिकार संस्कृत, तत्कालीन हिंदी एवं राजस्थान की ड़िगल भाषा के सच्चे अनुशीलक थे, शब्द में निहित अर्थ और अर्थ में गुम्फित भाव के प्रकाशक थे। उन्होंने केवल काव्य–पुष्प के बाह्य रंग को ही उद्घाटित नहीं किया, अपितु उन्होंने उसकी गंध, पवित्रता, अम्लानता को भी उसी कलानिपुणता के साथ प्रकट किया। वेलि की भाषा मृदु, कोमल अर्थधर्मी है जिससे उसकी काव्यशक्ति विलक्षण है। इसी विशेषता के कारण वेलिकार अपने समकालीन एवं परवर्ती डिंगल कवियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। ड़िगल भाषा में वेलि की रचना करके राठौरराज ने मार्धुय, ओज एवं प्रसाद काव्यगुणों का मणिकांचन समन्वय किया हैं।

वेलिकाव्य प्रकृति वैभव के सौंदर्य संरक्षण में विलासित व विकसित है, इसका प्रकृति वर्णन कलात्मक, आकर्षक, रसभाववर्धी तथा प्रभावपूर्ण है, जिसका रसास्वादन कर रसिक पाठक आत्मविभोर और रसतृप्त होते हैं। आलम्बन एवं उद्दीपन दृष्टि से इसकी प्रकृतिश्री समृद्ध एवं श्रृंगार मंजरित है। विशेष रूप से सूर्योदय और संध्यावर्णन में, बसंतागम में, वर्षा के प्रवाह में तथा शरद के सौंदर्य वर्णन में भावुक कवि की शारदीया कल्पना का निखार मंजुल एवं इन्द्रधनुषी है। वस्तुतः बेलि का प्रकृति वर्णन अत्यधिक रसात्मक, हृदयसंवेद्य तथा रूपकात्मक है। इसीलिए वेलि का प्रकृति वर्णन हिंदी साहित्य में प्रथम गौरव का अधिकारी है।

इस प्रकार वेलि में काव्य के अंतरंग (भावपक्ष) तथा बर्हिरंग (कलापक्ष) का कलात्मक समन्वय हुआ है। वस्तुतः भाव एवं कला सौंदर्य का आकर्षक मिलन ही इस काव्य की मौलिक विशेषता है। भाव और कला के मधुमिश्रण से कविता–कामिनी का रूप और अधिक पवित्र होकर निखरा है। इसके अंतर्गत राठौरराज ने विश्वासपूर्ण हृदय में स्थित प्रेमतत्व की श्रेष्ठता को व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। यदि समस्त बाङ्मय को उद्यान के रूपक द्वारा स्पष्ट किया जाए तो उस काव्यवाटिका के अन्य अंगों का प्रतीक अर्थ इस प्रकार किया जा सकता है – व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, अलेकार शास्त्र, वैद्यक, इतिहास, नीति आदि अन्य गुण स्वभाव सुरक्षित वृक्षों की भॉति है एवं वृक्षों के विविध अंगों के रूप में काव्य का वेलि नामकरण पूर्णतः उद्देश्यपूर्ण एवं सार्थक सिद्ध होता है।

वस्तुतः राठौरराज द्वारा रचित वेलि आत्मीय भावनाओं का पावन संगम है; श्रृंगार तथा भक्ति का विमल दर्पण है; कवि की मौलिक कल्पना और काव्य प्रतिभा का आलोकित गगन है एवं भक्तों के लिये प्रभु प्रेम का मर्यादा तीर्थ है। स्वयं रचनाकार की इस संबंध में यह स्वीकृति है कि – वेलिकथा का मूल आधार भागवत पुराण में वर्णित रूक्मणी विवाह का प्रसंग है, जिसका प्रथम अंकुरण कवि पृथ्वीराज की हृदय रूपी भावस्थली में हुआ है; उनकी भक्तिभावित वाणी से यह रसमय काव्यबेलि मंजरित हुई है; दोहला छंद इसकी जड़ है; संगीत इसका विकास है; भाव और अर्थ इसके मंडप वितान है। इस प्रकार अक्षर ही इसके पत्ते हैं, प्रभु का गुणगान इसकी मनोरम सुगंधि है, नवरस इस बेलि का तंतुजाल है एवं काव्य प्रेमी, सहृदय, रसमर्मज्ञ पाठकगण इस श्रृंगारवेलि में संचित रस के प्रेमी भ्रमरगण है। भक्ति ही इसका मंजरण है, इसके पठन पाठन से शरीर एवं मन की वासना का परिहार होता है, आनंद ही इसका फल है। अतैव यह इष्ट को समर्पित काव्यबेलि प्राणियों के समस्त सुख–ऐश्वर्य की उपलब्धि का साधन है।

निष्कर्षतः **'वेलि किसन रूक्मणी री'** हिंदी साहित्य का रसपूरित श्रृंगार है, भक्तियुग की पावन उपलब्धि है, भाव एवं कला वैभव विलासिनी है। अवश्य ही इस काव्य का अंगीरस श्रृंगार है, किंतु रचना के अंत में इस श्रृंगार की परिणिती भक्ति की शीतल छाया में होने से यह सरस भक्तिकाव्य भी है। प्रस्तुत ग्रंथ पृथ्वीराज की मौलिक रचना, अनुभवों की उर्वरता तथा श्रृंगार का पवित्र कलामंदिर है। इसमें लौकिक प्रेम की अनन्यता के साथ–साथ अलौकिक समर्पण का भी मंत्र निहित है। प्रस्तुत के माध्यम से अप्रस्तुत रूपक की सफल अभिव्यक्ति इसमें संभव हुई है। इस प्रकार काव्य लक्ष्य की दृष्टि से यह भक्तिप्रधान तथा लोकरस की दृष्टि से श्रृंगारप्रधान उत्कृष्ट कला सृष्टि है। वह डिंगल भाषा की कीर्ति का यशस्वी प्रमाण है, जिसकी रचनाधर्मिता में काव्यतत्व, प्रेमतत्व और भक्तितत्व का अनुपम, अम्लान, अमंद त्रिधार संगम रसप्लावित हो उठा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

(1) राजस्थानी भाषा और साहित्य : प्रो. भूपतिराम सकारिया : पृ. 14

(2) पाठालोचनः वेलिकिसनरूक्मणीरी : डॉ आनंद प्रकाश दीक्षित

(3) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 298

(4) भक्तमाल : नाभादास : पद सं. 140

(5) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 291

(6) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 8

(7) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 284

(8) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 293

(9) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 29

(10) 'वेलि किसन रूक्मणी री' : छंद 175

(11) पृथ्वीराज राठौडः व्यक्तित्व एवं कृतित्व : प्रो. भूपतिराम सकारिया

(12) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डॉ मोतीलाल मेनारिया